आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 3/जून 2023
Received:09/06/2023; Accepted:16/06/2023; Published:24/06/2023

अपना निजी कक्ष की माँग करती रचनाएँ

डॉ. सुगता.ए.आर
मोबाइल - 6238112491
ई मेल - sugathaar1992@gmail.com

डॉ. सुगता.ए.आर, **अपना निजी कक्ष की माँग करती रचनाएँ**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 3/जून 2023,(302-306)

स्त्री विमर्श का अर्थ है स्त्री को केंद्र में रखकर उसके जीवन के हर पहलु को लेकर गंभीर सोच विचार। वर्जीनीया वुल्फ की पुस्तक है **'ए रूम ऑफ़ वंस ओन' (अपना निजी कक्ष)** । उनकी इस पुस्तक ने यूरोप और अमेरिका के स्त्री विमर्श को ही नहीं, भारतीय स्त्री विमर्श को भी प्रभावित किया है। महिला लेखन में हाशिए पर छोड़ दिए गए नारी अस्तित्व को फिर से केंद्र में लाने और उसकी मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। वर्तमान स्त्री लेखन में स्वतंत्रता,समानता और न्याय जैसे मूलभूत अधिकारों के लिए संघर्षरत और सक्रिय स्त्री रचनाकार स्त्री-हितों की चर्चा स्वयं करने लगी है और अपनी अस्मिता को पहचान रही है। प्रभा खेतान का कहना है -'यह इतिहास में पहली बार घट रहा है कि स्त्री पितृसत्ता को नकार रही है, उस सत्ता द्वारा आरोपित भूमिकाओं के प्रति सवाल उठा रही है, वह वस्तु से व्यक्ति बनने की प्रक्रिया में है।' महिला लेखन सचमुच स्त्री के अस्मिता बोध की पहचान का परिणाम है। यह पुरुष के एकाधिकार को चुनौती देता है। वास्तव में महिला लेखन पुरुष विरोध नहीं है, बल्कि पुरुष वर्चस्व का विरोधी है। समकालीन दौर में स्त्री का एक नया संघर्षशील रूप महिला लेखन में उभरकर आया है। राजेन्द्र बाला घोष (बंग महिला) से लेकर अलका सरावगी तक एक लम्बी परम्परा महिला-लेखन में हमें दिखाई पड़ती है। महिला लेखन में आनेवाली दिक्कत एवं समस्याओं को अलका सरावगी ने **'इन लोगों ने धावा बोल दिया है'**, **'अंधेरी खोह में'** आदि कहानियों में और **'एक सच्ची-झूठी गाथा'** नामक उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

'इन लोगों ने धावा बोल दिया है ' नामक कहानी की मुख्य पात्र श्रीमती शीला तयाल है - "मिसेज शीला तयाल यानी एस.टी से कलकत्ता महानगर के तीन सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में एक अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन द्वारा कलकत्ते पर लेख लिखने के लिए कहा गया है। इसी कारण पिछले तीन महीने से एस.टी इसी तरह सुबह साढे तीन बजे उठ रही है। इस लेख को लिखने के लिए पिछले तीन महीनों से वे अपनी इधर-उधर बिखरी जिन्दगी से एक-एक मिनट समय बचाकर जोड़ रही है।"[1] वास्तव में लिखने के लिए समय को बचाना हर लेखिका की मजबूरी है। शादी के बाद भी पुरुष किसी परेशानी के बिना अपना काम कर सकते हैं, लेकिन स्त्रियों के लिए यह मुश्किल है। घर की हालत उसे लिखने नहीं देती है। इसलिए "एस.टी को हर आदमी एक शत्रु की तरह नज़र आता है, जो उनका समय और सोच खाने के लिए षड्यंत्र रच रहा है।...एस.टी. को लगता है कि उनकी सहनशीलता का 'इंडेक्स' अभी सबसे निचले बिन्दू पर आ गया है। चाहे उनकी सास का रखा गया मासिक कीर्तन हो या बेटी की नज़दीक आ गई दसवीं कक्षा की बोर्ड की परीक्षा-हर काम उनमें एक विरोध और झल्लाहट पैदा करता है।"[2] यह मात्र एस.टी. की स्थिति नहीं है। लिखनेवाली सभी औरतों की समस्या है। सारे काम करने के बाद भी निश्चिन्त होकर बैठकर लिखने के अवसर उन्हें नहीं मिलते हैं। घरवाले विशेषकर पति उसका साथ नहीं देता है तो कठिनाइयाँ और भी बढ जाती हैं- "उनके पति उनसे कई बार पूछ चुके हैं कि क्या उन्होंने लेख लिखना शुरू कर दिया है। वे जानती हैं कि इसका अर्थ यह है कि वे आखिर कब इस झंझट से मुक्त होंगी।"[3] पति उसे समझते ही नहीं हैं। दोनों के काम अलग होने के कारण वे समझ नहीं पाती हैं कि लिखना कितना मुश्किल कार्य होता है। इसलिए वे सोचती हैं कि - "किसी लेख को लिखने का अर्थ तथ्यों का संयोजन मात्र नहीं होता-यह किसी को कैसे बताया जा सकता है?....इन तथ्यों को रचने-पचने के लिए समय देना होता है। मगर यह सब उन लोगों को समझाया नहीं जा सकता, जिनका यह काम नहीं है।"[4] सच्चाई यह है कि घरवालों में से कोई भी उसे समझता नहीं है।

महिला लेखन की समस्या को अलका जी ने अपनी एक और कहानी 'अंधेरी खोह में' में भी प्रस्तुत किया है-"यों मिसेज शुक्ला साल में दो-एक कहानियाँ और कविताएँ भी लिख डालती हैं,पर कविता-कहानी लिखना अब उनके लिए दिन-ब-दिन कठिन होता जा रहा है। ऐसे होने के भी अनेक कारण हैं। मिसेज शुक्ला को लगता

है कि एक बड़ा कारण तो उनका स्त्री होना है और वह भी एक परंपरागत स्त्री होना। उनके अनुभवों की दुनिया इस वजह से कितनी सीमित है। पिता और फिर पति की रक्षिता स्त्री और लडकियों के कॉलेज में हिन्दी साहित्य की प्राध्यापिका-सिर्फ इतने जीवन में कितनी कहानियाँ-कविताएँ निकाल सकती हैं?"[5] अलका जी ने इस प्रश्न को हमारे सम्मुख रखा है।

स्त्री लिखने के लिए काबिल कितने ही क्यों न हो लोग एवं समाज उसे पुरुषों के मुकाबले निम्न ही मानते हैं। उसकी क्षमता को यह कहकर नज़रअंदाज़ करते हैं कि स्त्री होने के कारण ही उसकी रचना प्रकाशित हो रही है। मिसेज़ शुक्ला को भी लोगों की इस मानसिकता से गुज़रना पड़ता है- "उनकी पहली कहानी के प्रकाशित होने पर बहुत-से पाठकों के पत्र मिलने के उल्लास को उनकी एक प्राध्यापिका सहेली ने यह कहकर बहुत धक्का पहुँचाया था कि ये पत्र उन्हें एक स्त्री होने के कारण लिखे गए हैं। तब तक उनके दिमाग से यह अहसास गुजरा तक नहीं था कि लिखने-पढ़ने की दुनिया में भी इसी तरह के भेदभाव बरते जाते हैं। बाकी ज़िन्दगी में तो वे बचपन से लेकर अभी तक अपनी औरत होने को बहुत कम लड़ाई के साथ स्वीकार करती आ रही थीं। किन्तु क्या वाकई कोई उनकी रचना छपेगा या किसी गोष्ठी में बुलाएगा या उन्हें पत्र लिखेगा, तो इसलिए नहीं कि उनकी रचना में कुछ है, बल्कि इसलिए की वे एक औरत हैं?"[6] लेखिका के अनुसार काबिल स्त्री को पुरुषवर्चस्ववादी समाज स्वीकार ही नहीं करता है-"कोई स्त्री अपने लेखन को लेकर सीरियस हो सकती है, यह बात शायद पुरुष के गले नहीं उतरती। या उसकी लगन को उसकी बेवकूफी समझकर वह स्त्री के आगे एक चारा डाल देता है कि उसे फँसाया जा सके। मजे की बात कि ये ही वे पुरुष हैं जो स्त्री की अपनी बात अपनी तरह से बोलने की आजादी की वकालत करते रहते हैं।"[7] इन पुरुषों में पुरुष सत्तात्मक समाज की मानसिकता हम देख सकते हैं।

समाज की इस मानसिकता को अलका जी ने अपने उपन्यास 'एक सच्ची-झूठी गाथा' में भी प्रस्तुत किया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र गाथा है जो एक लेखिका है। गाथा को भी एक बार इस पुरुषसत्तात्मक सोच के शिकार होना पड़ा था-"एक बार भरी सभा में किसी ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा था कि ड्राइंगरूम में बैठकर साहित्य नहीं लिखा जा सकता। उसके बाद उठी हँसी की दबी हुई ध्वनि मैं कभी नहीं भूली।"[8] चाहे स्त्री कितनी भी ऊँचे ओहदे पर जाये पुरुष उसे मानते नहीं और उसे अपने अधीन ही बनाये रखने की कोशिश करते

रहते हैं। स्त्री किसी ऊँचे पद पर पहुँचती है तो पुरुष के अंह को चोट पहुँचती है। इसलिए वे स्त्रियों को मौका ही नहीं देना चाहते हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी ऐसे भेदभाव होते हैं। गाथा के इस कथन से हमें यह पता चलता है कि "लिखने-पढ़नेवालों की दुनिया में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं जो पूछते हैं कि वह एक स्त्री होकर ऐसी कहानियाँ कैसे लिख लेती है? ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो कहते हैं कि वह स्त्री होकर स्त्री की तरह क्यों नहीं लिखती?"[9] हमें समाज की इस नज़रिए को बदलने की जरूरत है। क्योंकि किसी भी रचना के मूल्याकंन उसकी गुणवत्ता के अनुसार करना चाहिए न कि रचनाकार के लिंग के हिसाब से।

महिलाओं को लिखने में सबसे अधिक दिक्कत समय न मिलने के कारण होती है। घर,दफ्तर और बच्चों की जिम्मेदारी संभालते हुए जो समय बचता है, उस समय वह लिखने लगती है। यह उतना आसान कार्य नहीं है। अलका जी ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है -"पापा की कर्मठ कुर्सी पर बैठकर पाँच दिन में मैंने चालीस पन्ने लिख डाले। इन पाँच दिनों में पापा ने न मुझे एक मिनट अपने बच्चों से फोन में बात करने दी और न ऊपर इन्तज़ार करती माँ से। सिर्फ रात को सोने के लिए ऊपर घर में जाने की अनुमति थी।....पापा ने सुझाव दिया कि सुबह रौशनी फूटते ही आ जाया करो। डेढ़-दो किलोमीटर की दूरी ही तो है। तीन घंटे लिखकर लौट जाओ। बस यही बात पतिदेव को बुरी लगी। सुबह-सुबह यहाँ कौन तुम्हें डिस्टर्ब करता है? बात बढ़ गई। मैंने गुस्से में सोचा मुझे लिखना ही नहीं है।"[10] अपने ही घरवालों से कई स्त्रियों को ऐसा अनुभव मिलता है, जिसके कारण वे लिखना कम करती हैं या छोड़ देती हैं।

अलका जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से महिला-लेखन में आनेवाली प्रमुख समस्याओं को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है और उन्होंने स्त्री रचनाकारों के साथ होनेवाले भेदभाव को भी दर्शाया है। वर्तमान समय में पुरुष-लेखन में मात्र एक पात्र होने की भूमिका से निकलकर स्त्री-रचनाकारों ने स्वयं अपनी कलम से अस्तित्व, व्यक्तित्व और विचार को अभिव्यक्ति देना अभीष्ट समझा।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. अलका सरावगी. (2000). दूसरी कहानी. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ- 76
2. वही. पृ- 77

3. वही. पृ- 77-78
4. वही. पृ- 78
5. वही. पृ- 51
6. वही. पृ- 53
7. अलका सरावगी. (2018). एक सच्ची-झूठी गाथा. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ- 55
8. वही. पृ- 57
9. वही. पृ- 12
10. वही. पृ- 32

****